# इकाई 23 श्रम संगठन आन्दोलन

इकाई की रूपरेखा


23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 श्रम संगठन सिद्धान्तवादियों के विचार
23.3 व्यवहारवादी सिद्धान्त
23.3.1 व्यवहारवादी सिद्धान्त के आलोचक
23.4 अराजकतावादी श्रम संघवादी सिद्धान्त
23.4.1 श्रम संघवादी
23.5 मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त
23.5.1 अराजकतावाद और मार्क्सवाद में अंतर
23.5.2 श्रम संगठन आन्दोलन पर लेनिन के विचार
23.6 नव वामपंथी विचार
23.6.1 सुधारवादियों की लेनिन द्वारा आलोचना
23.6.2 नव वामपंथ
23.7 विकासशील देशों में श्रम संगठन आन्दोलन की विशिष्टताएं
23.8 विभिन्न देशों में श्रमिक संघ आन्दोलन
23.8.1 संयुक्त राज्य अमेरिका में श्रमिक संघ आन्दोलन
23.8.2 यूनाइटिड किंगडम में श्रमिक आन्दोलन
23.8.3 समाजवादी राज्य में श्रमिक संगठन आन्दोलन : पूर्व सोवियत संघ
23.9 भारतीय श्रमिक संघ आंदोलन
23.10 सारांश
23.11 शब्दावली
23.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें
23.13 बोध प्रश्नों के उत्तर


## 23.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य श्रम संगठन आन्दोलन का संक्षिप्त लेखा प्रस्तुत करना है। साथ ही श्रम संगठन आन्दोलन के विभिन्न सिद्धान्त और विभिन्न देशों में श्रम संगठन के कार्य संचालन को भी प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आप :

- श्रम संगठन आन्दोलन के विभिन्न सिद्धान्तों को समझ सकेंगे;
- उदारवादी, मार्क्सवादी और अराजकतावादी सिद्धान्तों में अंतर कर सकेंगे;
- विभिन्न देशों में श्रम संगठन आन्दोलन के विकास और प्रकृति को समझ सकेंगे; तथा
- भारत में श्रम संगठन आन्दोलन के उद्भव और विकास को समझ सकेंगे।

## 23.1 प्रस्तावना

मानव का सामाजिक जीवन उसके कार्य पर निर्भर करता है। कार्य की प्रकृति समय और स्थान के अनुसार बदलती रहती है। श्रमिकों की विभिन्न प्रकार की श्रेणियाँ व सम्बन्ध होते हैं। आधुनिक युग में उद्योगों के विकास के साथ औद्योगिक श्रमिकों की एक श्रेणी होती है जो श्रमिक वर्ग का प्रमुख हिस्सा होते हैं। वर्ग की अवधारणा से जुड़े अनेक सिद्धान्त और विवाद हैं। 'श्रमिक वर्ग' क्या है से जुड़े अनेक सिद्धान्त हैं। जब भी 'श्रमिक वर्ग' शब्दों का प्रयोग होता है इससे उन लोगों का बोध होता है जो अपने श्रम का विक्रय कर अपनी आजीविका प्राप्त करते हैं। इसमें यह भी मान्यता है कि कुछ लोग श्रम क्रय करते हैं। श्रमिक वर्ग एक-दूसरे से हाथ मिलाकर या एकजुट होकर

अपनी सौदेबाज़ी की क्षमता को बढ़ा सकते हैं। उनके आपस में इस प्रकार मिलने को श्रम संघवाद कहा जाता है।

आधुनिक युग में श्रम संघवाद के विकास पर एक नज़र डालने से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि विश्व मंच पर श्रम संगठन आन्दोलन, औद्योगिक श्रमिक वर्ग तथा पूँजीवाद का उदय साथ साथ हुआ। राज्य द्वारा समर्थित शक्तिशाली पूँजीवादी वर्ग का सामना श्रमिक वर्ग केवल संगठित होकर ही कर सकता था। इस कारण पूँजीवादी वर्ग ने श्रमिकों की संगठनबन्दी का कभी स्वागत नहीं किया। उसने सदा श्रमिकों के किसी भी संगठन को कुचला है। पूँजीवादी वर्ग का हित व्यक्तिगत रूप से एक श्रमिक से सौदेबाज़ी करने में होता है न कि श्रमिकों के सामूहिक संगठन से जबकि श्रमिकों के अनुभव ने उन्हें सिखाया है कि वे पूँजीवादियों का अकेले नहीं केवल एक जुट होकर सामना कर सकते हैं।

आरम्भ से ही पूँजीवादियों ने श्रमिक संगठनों पर प्रहार किया है। राज्य ने भी अपने संयंत्र - विधायिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका के समर्थन से उन्हें सहयोग दिया है। श्रमिक संगठनों पर रोक लगाने के लिए कानून बनाए गए।

**जी. डी. एस कोल** का विचार है कि "ग्रेट ब्रिटेन में अठारहवीं शताब्दी में ऐसे कई कानून बने जिन्होंने विशिट उद्यमों में श्रमिकों की एक जुटता पर रोक लगाई।" उनका कहना है कि 1799 और 1800 के संयुक्त (combination) अधिनियमों का उद्देश्य इन संगठनों को ग़ैर-कानूनी घोषित कर उन पर और रोक लगाना था। इस प्रकार इन्हें सार्वजनिक हितों के विरुद्ध घोषित कर व इन कानूनों का उल्लंघन करने वालों के विरुद्ध कार्यवाही को सरल बनाया गया। 1799 व 1800 के संयुक्त अधिनियमों को एकजुटता पर प्रतिबन्ध का आरंभ नहीं मानना चाहिए। वास्तव में यह तो उन कानूनों की परिणति थी जो संसद ने 1548 के **बिल ऑफ़ कांस्पिरेसीज़ व विक्युअलर्स व ड्राफ्ट्समैन** - जो मज़दूरी बढ़ाने तथा काम के घंटे कम करने की माँग को लेकर संगठन बनाने के विरुद्ध पारित किए गए थे। श्रम संगठनों को बदनाम किया गया और उन्हें उद्योगों को तोड़ने, अर्थव्यवस्था के ह्रास तथा समाज के कोमल तंतु को जोड़ने वाले सामाजिक अधिकारों व विशेषाधिकारों को क्षीण करने वाला ठहराया गया।

श्रमिक संगठनों के विरुद्ध सिद्धान्तवादियों ने राज्य के उन अधिकारों को स्वीकार किया जो श्रमिकों के किसी भी प्रकार के संगठन पर प्रतिबन्ध लगा सकते थे और इसका आधार 'व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का सार्वभौमिक अधिकार' माना गया। पूँजीवाद के यह दार्शनिक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के संपूर्ण अधिकार के नाम पर यह सिद्ध करने लगे कि 'संगठनबाजी समझौते में प्रवेश करने के व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के संप्रभु अधिकार का हनन है।' न्यायालयों ने भी इस दलील को स्वीकारा और ऐसे सभी गठबन्धनों को ग़ैर-कानूनी घोषित करने की प्रवृत्ति दर्शाने लगे। इसका आधार यह था कि इनके द्वारा लोगों की अपने मनमाने ढंग से अपने श्रम का प्रयोग करने की 'प्राकृतिक' स्वतन्त्रता पर बंधन लगता है। रुढ़िवादी अर्थशास्त्री (पूँजीवादी व्यवस्था के वक्त) भी श्रमिकों के संगठनों का विरोध करने लगे और यह मानने लगे कि "उद्योगों के उत्पाद में मज़दूरी का भाग अटल है जो जनसंख्या के नियंत्रण व विकास के कानूनों पर आधारित हैं।" यह कहा गया कि "मज़दूरी जीवन निर्वाह के स्तर से कभी आगे नहीं बढ़ सकती क्योंकि यदि ऐसा हुआ तो अधिक बच्चे पैदा होंगे या अधिक ज़ीवित रहेंगे और अतिरिक्त श्रम संभव हो सकेगा।"

अतः अपने को संगठित करने के अधिकार को मान्यता दिलाने के लिए मज़दूरों को संघर्षरत होना पड़ा। कई देशों में उन्होंने गुप्त समूह बनाए ताकि श्रमिकों की एकता के मूल अधिकार को प्रश्रय दिया जा सके। कोल के अनुसार, "आरंभिक श्रम संगठनों को कठोर संघर्ष करना पड़ा। जिन लोगों ने इनके संगठन की अगुवाई की उन्हें अपनी नौकरियों से हाथ धोना पड़ा और नई नौकरी मिलना कठिन हो गया। इसके अतिरिक्त जिन्होंने हड़तालों का संगठन किया या मात्र श्रम संगठन की स्थापना का अपराध किया या सामूहिक माँगें की उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।" श्रमिकों को उत्पीड़न और दमन का सामना करना पड़ा। अंततः सभी बाधाओं को पार कर वे संगठन का अधिकार पाने में सफल हुए। 1824 में ग्रेट ब्रिटेन में श्रमिकों के गठबन्धनों का विरोध करने वाले

कानून वापस ले लिए गए। यह पर्याप्त नहीं था क्योंकि अधिनियम में कई खामियाँ थीं। यह कहने की बात नहीं कि कारखानों के मालिक किसी न किसी भांति उनके अधिकारों को अस्वीकार करते रहे। यह भी स्पष्ट होने लगा कि श्रमिकों के अधिकारों का संघर्ष राजनीतिक संघर्ष से विलग नहीं किया जा सकता। अतः मताधिकार व अन्य अधिकारों के लिए श्रमिकों ने जी जान से संघर्ष किया। अपने खून पसीने की कीमत पर ही मज़दूरों ने अपने को संगठित करने का अधिकार हासिल किया।

**बोध प्रश्न 1**

**नोटः** क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) मालिकों द्वारा श्रमिकों के किसी भी प्रकार के गठबन्धन का विरोध क्यों किया गया?

.....

.....

.....

.....

2) श्रम संगठनों में संगठित होने का अधिकार श्रमिकों ने किस प्रकार हासिल किया?

.....

.....

.....

.....

## 23.2 श्रम संगठन सिद्धान्तवादियों के विचार

अब अधिकतर पूँजीवादी देशों में श्रमिकों के संगठन के अधिकार को मान्यता मिल गई है। परन्तु श्रम संगठनों के राजनीतिकरण की आलोचना की गई है। कुछ विद्वानों ने यह भविष्यवाणी की है कि भविष्य में श्रम संगठन अब तक प्राप्त पद खो देंगे। **प्रोफेसर गैलब्रेथ** के मतानुसार, भविष्य में यह संगठन "लगभग स्थाई तौर पर विलीन हो जांएगे"। जो लोग श्रम संगठनों को व्यवस्था का आवश्यक हिस्सा मानते हैं और समाज में उनकी सकारात्मक भूमिका को स्वीकार करते हैं, वे भी राजनीति से उनके घनिष्ठ सम्बन्धों को पसन्द नहीं करते। **ऐलन फ्लैन्डर्स** श्रम संगठनों को "आन्दोलन व संगठन का मिश्रण" मानते हैं। उनका कहना है कि "श्रम संगठनों का एक मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों की नौकरी व कामकाजी जीवन से जुड़े अनेक मुद्दों के सम्बन्ध में सौदेबाजी करना है।" वह मानते हैं कि, "श्रम संगठनों का सतत् सामाजिक उद्देश्य नौकरी या काम काज नियंत्रण में भागीदारी है पर भागीदारी साध्य नहीं है यह तो श्रमिकों को अपने कामकाजी जीवन पर अधिक नियंत्रण दिलवाने का साधन है।" **आर. एफ. होक्सी** का कहना है कि "यद्यपि संपूर्ण में और अलग संगठन के लिए अलग रूप श्रम संगठनों का कार्यक्रम मिश्रित व अपूर्ण होता है, तथापि उसका आर्थिक कार्यक्रम एक निश्चित, असाधारण संकेत देता है।" संगठनवाद का आर्थिक दृष्टिकोण एक समूह का दृष्टिकोण होता है और इसका कार्यक्रम एक समूह का कार्यक्रम। संगठन का मुख्य उद्देश्य सम्बन्धित समूह के श्रमिकों को लाभ पहुँचाना है न कि संपूर्ण रूप में श्रमिकों को या समाज को। इसके सिद्धान्त मज़दूरी, काम के घंटे, कार्य की दशाओं आदि से संबंधित होते हैं। अमेरिकी श्रम संगठनों का अध्ययन करने वाले जैक बार्बश का कथन है, "अधिक मज़दूरी और कम घंटे संघ में शामिल होने के स्पष्ट व वास्तविक कारण है।" श्रमिक संगठनों में इसलिए शामिल होते हैं ताकि पक्षपात और व्यक्तित्वहीनता से बच सकें। **फ्रैड रुच. ब्लम** ने हॉर्मल पैंकिग हाऊस के श्रमिकों के अनुभव का अध्ययन करके यह विचार व्यक्ति किया कि संगठनों का उद्देश्य कार्य प्रक्रिया को इस प्रकार संचालित करना है कि मानवीय मूल्य केन्द्रीभूत महत्व पा सकें। मुक्त समाजों में श्रम संगठनों की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए आर. सी. राबर्टस ने कहा है कि, "मुक्त समाजों में श्रम संगठन

स्त्री और पुरुषों की सामूहिक कार्यवाही द्वारा अपने हितों के संरक्षण और संवर्धन के लिए स्वयं को संगठित करने के मूलभूत अधिकार की अभिव्यक्ति है।' वह लिखते हैं, "एक मुक्त समाज में संगठन के अधिकार का तात्पर्य उस शक्ति का प्रयोग है जो उदारवादी, कानूनी ढांचे के अन्तर्गत सामूहिक कार्यवाही में निहित है। लोकतंत्र की परिभाा से ही यह स्पट है कि यह ऐसा समाज है जिसमें शक्ति पूर्णरूपेण या मुख्यतः सरकार के हाथों में केन्द्रित नहीं है। आधुनिक शब्दावली में विविध अभिकरणों जैसे स्वयंसेवी संगठनों या श्रम संगठनों के माध्यम से यह शक्ति विकेन्द्रित है। श्रम संगठनों की भूमिका महत्वपूर्ण है अतः उन्हें उद्योगों में कार्य संचालन या अपने पक्ष में विधि निर्माण के लिए सरकार पर दबाव डालने की आवश्यक स्वतन्त्रता होनी चाहिए।" आर. सी. राबर्ट्स का मानना है कि "एक मुक्त समाज में विभिन्न समूहों के हित आवश्यक रूप से परस्पर टकराएंगे। लोकतंत्र का सार सामाजिक व राजनीतिक शक्तियों की अन्तर्क्रिया द्वारा इस टकराव को सुलझाना है। यह उस आधारभूत मान्यता में निहित है जिसके अनुसार एक लोकतान्त्रिक समाज में श्रम संगठनों को मालिकों व राज्य दोनों से स्वतन्त्र होना स्वीकार किया गया है।

**बोध प्रश्न 2**

**नोटः** क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) एक पूँजीवादी समाज में श्रम संगठनों का क्या उद्देश्य होता है?

.....

.....

.....

.....

2) आधुनिक विकसित समाजों में इनका राजनीति से क्या सम्बन्ध होता है?

.....

.....

.....

.....

## 23.3 व्यवहारवादी सिद्धान्त

आरंभ में श्रम संगठनों को शासन द्वारा विरोध का सामना करना पड़ा, पर वे अडिंग रहे और आज वे सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग माने जा रहे हैं। उन्हें दबाव समूह माना गया है और इसलिए कहा जाता है कि "एक विरोधी आन्दोलन के रूप में शुरूआत कर श्रम संगठन मान्य संस्थाओं के रूप में आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था में स्थापित हो चुके हैं।" श्रम संगठनों की भूमिका में बहुत परिवर्तन हुआ है। आरंभ में उन्हें व्यवस्था का विरोधी माना जाता था परन्तु अब श्रम संगठन सामाजिक व्यवस्था से संबंध स्थापित कर चुके है। **मार्क वैंडे वाल** "वर्ग और वर्ग संघर्ष की मार्क्सवादी अवधारणा का खंडन करता है और **पीटर ड्रकर** द्वारा 1952 में अमेरिकन सोशिओलॉजिकल सोसाइटी की सातवीं वार्षिक बैठक में प्रयुक्त शब्दावली स्वीकार करता है।" "वर्तमान समाज स्तरीय समाज है, पुरातन समाज व्रर्गीय समाज था।" दबाव समूहों के रूप में श्रम संगठन राजनीतिक व्यवस्था का हिस्सा माने जाते है। राजनीतिक व्यवस्था को व्यवहारवादी एक इलैक्ट्रानिक कम्प्यूटर जैसा मानते हैं जो प्रक्रियाओं से गुज़र कर 'निवेश' को 'निर्गतों' में रूपांतरित करता है। समायोजन

प्रक्रम द्वारा निर्गतों से निवेश प्रक्रम में पुनः संभरण होता है जो निवेश व्यवस्था पर पड़ने वाले विभिन्न प्रकार के दबाव हैं। पूँजीवाद की आरंभिक अवस्था में श्रम संगठनों को संदेहास्पद दृष्टि से देखा जाता था। परन्तु आधुनिक राजनीतिक विद्वान मानते हैं कि वे व्यवस्था पर बराबर का या कभी कभी अधिक सशक्त दबाव डालते हैं। एक विकसित समाज में व्यवस्था को निर्मित तटस्थ प्रक्रम माना जाता है जो विभिन्न समूहों के मध्य संतुलन स्थापित करता है। ब्लान्डेल का मानना है कि, यह कहना कि राजनीति समाज में मूल्यों का आधिकारिक आबंटन है यह कहने के बराबर होगा कि मूल्यों और इन मूल्यों के स्वामियों के मध्य कुछ न कुछ टकराव होता है। सरकार को अपने उपलब्ध सब साधनों द्वारा इस टकराव को सुलझाना ही होता है, इस शक्ति पर बंधन केवल यही है कि व्यवस्था का बिखराव न होने पाए।"

व्यवहारवादी राजनीतिक विद्वान यह मानते हैं कि विकसित समाजों में श्रम संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका है। परन्तु वे मार्क्सवादियों व समाजवादियों की इस मान्यता का खंडन करते हैं कि श्रम संगठन वर्ग संर्घष का साधन है या समाजवादी समाज की स्थापना में उनका कोई राजनीतिक योगदान है। उनके लिए श्रम संगठन उत्पीड़ित श्रमिक वर्ग के संगठन नहीं है। राजनीति में उनकी भागीदारी का अर्थ है राजनीति व्यवस्था में विभिन्न प्रकार से दबाव डालना ताकि श्रमिकों को अधिकतम लाभ हो सके।

### 23.3.1 व्यवहारवादी सिद्धान्त के आलोचक

परम्परावादियों, उदारवादियों व आधुनिक व्यवहारवादियों के अनुसार राज्य एक निष्पक्ष और तटस्थ संस्था है जो बिना किसी पक्षपात के विरोधी हितों में मध्यस्थता करता है। राज्य की ओर से पूँजी और श्रम बराबर हैं और यांत्रिक रूप में उनके दावे स्वीकार या अस्वीकार किए जाते हैं। वे समाज को एक यांत्रिक प्रक्रिया मानते हैं जहाँ भारी परिवर्तन व क्रांतिकारी बदलाव नहीं होते, श्रमिक वर्ग इस व्यवस्था का सामान्य हिस्सा है। समाजवादी विचारधारा राज्य को निष्पक्ष निकाय नहीं मानती और यह मानती है कि श्रमिक वर्ग को एक अलग और क्रांतिकारी भूमिका, अर्थात् समाज को परिवर्तित करना, निभानी है। नई सामाजिक व्यवस्था की स्थापना में राज्य की भूमिका को लेकर वैचारिक मतभेद है परन्तु समाजवादी विचारधाराएँ यह स्वीकार करती हैं कि राज्य शासन वर्ग के हाथों में शोषण का साधन है। समाजवादी यह आशा करते हैं कि शांतिपूर्ण तरीके से समाज के रूपान्तरण में राज्य एक साधन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। मार्क्सवादी सर्वहारा वर्ग की तानाशाही के रूप में राज्य की संक्रमणकारी भूमिका मानते हैं। सर्वहारा वर्ग की तानाशाही का स्थान वर्गविहीन समाज की साम्यवादी सामाजिक अवस्था ले लेगी जहाँ वर्गीय समाज का प्रमुख लक्षण वर्ग विभेद पूर्णतः लुप्त हो जाएगा। अराजकतावादी (Anarchists) और श्रम संघवादी (Syndicatists) राज्य को संदेह की दृष्टि से देखते हैं और राज्य से दूर ही रहना चाहते हैं। उनके अनुसार राज्य स्वभाव से ही उत्पीड़क है और समाज के परिवर्तन का साधन हो ही नहीं सकता। उनके अनुसार राज्य और धर्म शासक वर्गों के साधन हैं व उन्हीं का हित साधन करते हैं।

**बोध प्रश्न 3**

**नोटः** क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) व्यवहारवादियों के अनुसार राजनीति में श्रम संगठनों की क्या भूमिका है?

.....

.....

.....

.....

.....

## 23.4 अराजकतावादी श्रम संगठनवादी सिद्धान्त (Anarchist Syndicalist Theory)

अराजकतावादी विचारक प्रोधों (Proudhon) का कहना था 'संपत्ति चोरी है' जिसे संपत्तिवान वर्गों ने मानव का मूलभूत अधिकार माना है। संपत्तिवान वर्ग राज्य द्वारा समर्थित चोर हैं। लोगों को यह कोशिश करनी चाहिए कि इन संपत्तिवान वर्गों की सभी संस्थाओं को निर्मूल कर दें। एक वास्तविक मानवीय समुदाय केवल वर्गविहीन नहीं वरन् राज्य विहीन समाज होगा। एक आदर्श अराजकतावादी "समाज का संगठन इस प्रकार करना चाहता है कि प्रत्येक व्यक्ति स्त्री और पुरुष जीवन में और अपने कार्य में अपनी विविध क्षमताओं के प्रयोग और संवर्धन के लिए लगभग एक समान साधन उपलब्ध कर सके। ऐसे समाज के निर्माण से, जहाँ किसी के भी श्रम का शोषण असंभव हो जाए, प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक संपदा का पूर्ण उपभोग कर सकेगा।" यह संपदा वास्तव में सामूहिक श्रम द्वारा उत्पन्न होती है परन्तु एक व्यक्ति वहीं तक उसका उपभोग कर सकता है जहाँ तक उसके निर्माण में उसने योगदान दिया है। इसके लिए, बैकुनिन (Bakunin) का मानना है कि "इसके लिए सिद्धान्त और व्यवहार में राजनीतिक सत्ता का उन्मूलन करना होगा क्योंकि जब तक राजनीतिक सत्ता का अस्तित्व है तब तक शासक व शासित, मालिक और गुलाम, शोक और शोति रहेंगे।" निर्मूल राजनीतिक सत्ता का स्थान उत्पादन शक्तियों और आर्थिक सेवाओं का संगठन ले लेगा। उसका मानना है कि आधुनिक राज्यों के अत्यधिक विकास के बावजूद यह विकास स्वयं राज्य को निरर्थक बना रहा है अतः राज्य व राज्य सिद्धान्तों के दिन गिनती के रह गए हैं। अराजकतावादियों के इस विचार का आधार यह है कि राज्य पूँजीवादी व्यवस्था को सरंक्षण देता है अतः पहलेपहल राज्य पर प्रहार करना चाहिए, अन्य व्यवस्थाएँ स्वयमेव टूट जाएगी। वे मार्क्सवादी साम्यवादियों का घोर विरोध करते हैं जो बूर्जुआ वर्ग के विनाश के लिए राज्य सत्ता पर नियंत्रण पाना चाहते हैं। बैकुनिन का मानना है कि "केवल साम्यवादी ही यह कल्पना कर सकते हैं कि वे श्रमिक वर्ग की राजनीतिक सत्ता, शहरी सर्वहारा व उग्र बूर्जुआ के सहयोग से इसे (वर्गविहीन सामाजिक व्यवस्था) को प्राप्त कर सकते हैं - जबकि क्रांतिकारी समाजवादी, इस प्रकार के महत्वाकांक्षी गठबंधन के विरोधी, विश्वास करते हैं कि यह सामान्य लक्ष्य राजनीतिक नहीं वरन् शहरी व ग्रामीण कामगरों के सामाजिक (और इसलिए अराजनीतिक) संगठन व ताकत से ही हासिल हो सकता है।

बैकुनिन साम्यवादियों की आलोचना करते हुए कहता है कि "साम्यवादियों का विश्वास है कि राज्य की राजनीतिक सत्ता पर स्वामित्व के लिए श्रम शक्ति का संगठन आवश्यक है। क्रान्तिकारी समाजवादी संगठित होते हैं राज्य के विनाश या बेहतर भाषा में राज्य के उन्मूलन के लिए। साम्यवादी सिद्धान्ततः और व्यवहार में सत्ता के पक्षधर हैं जबकि क्रांतिकारी समाजवादियों का विश्वास केवल स्वतन्त्रता में है।" वे आगे कहते हैं, "इसका दुर्भाग्य सरकार के इस या उस रूप में नहीं है वरन् उसके सिद्धान्त व सरकार के अस्तित्व में है चाहे उसकी प्रकृति कैसी भी हो" ... हमारे झंडे, सामाजिक क्रान्तिकारी झंडे में यह शब्द कठोर और खूनी शब्दों में अंकित है, सभी राज्यों का विनाश, बूर्जुआ सभ्यता का सर्वनाश..." अतः अराजकतवादी प्रतिपादन करता है "इस नये संगठन के निर्माण से पूर्व बल्कि उसके निर्माण में लोगों को सहयोग देने के लिए, उसे उखाड़ फेंकना होगा, जो है, ताकि उसे स्थापित किया जा सके जिसे होना चाहिए।"

### 23.4.1 श्रम संघवादी (Syndicatists)

अराजकतावादियों की भांति श्रम संघवादी राज्य शब्द से घृणा करते हैं। श्रमिक वर्ग के राज्य सत्ता से किसी भी प्रकार का सूत्र उनके उद्देश्य को विफल कर देगा। संघवादियों का यह दृढ़ विश्वास है कि राज्य की प्रकृति ही ऐसी है कि वह क्रांतिकारी परिवर्तन का साधन बन ही नहीं सकता। अतः संघवादियों के लिए आदर्श समाज श्रमिक वर्ग संगठनों का संघटन है जहाँ राज्य सत्ता के लिए कोई स्थान नहीं है। श्रमिकों के संगठन पूँजीवादी व्यवस्था व राज्य सत्ता पर प्रहार करेंगे जो इस व्यवस्था का पोषक है। संघवादी दर्शन का दार्शनिक और वक्ता, सोरेल (Soral) हिंसा के सिद्धान्त का प्रतिपादक था। वह हिंसा की प्रशंसा करता है और वर्तमान व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिए हिंसात्मक उपायों को स्वीकार करता है। पूँजीपति वर्ग को भयग्रस्त करने के लिए श्रमिको को आम

हड़ताल का उपाय करना चाहिए। अपनी पुस्तक '*रिफ्लैक्शन्स ऑन वॉयलैन्स*' में सोरेल लिखता है, "क्रान्तिकारी संगठनवाद लोगों के मनोमस्तिक में हड़ताल की इच्छा को जीवन्त रखता है और वह स्वयं समृद्ध होता है जब महत्वपूर्ण हिंसात्मक हड़ताले हों।" हड़तालों का एक भावप्रणव उद्देश्य है। वे केवल सौदेबाजी का साधन नहीं है, उनकी एक संवेदनात्मक व शैक्षणिक भूमिका है। सोरेल बुद्धिवाद-विरोध का समर्थक था। वह लिखता है कि 'संघवादी अनायास या स्वतःप्रवर्तिन में विश्वास रखता है, ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं है जिसके माध्यम से वैज्ञानिक रूप से भविष्यवाणी की जा सके। इसलिए उसके विचार से मिथक के माध्यम हड़ताल की भावना श्रमिकों में भरनी चाहिए। "ऐसी छवि का प्रयोग किया जाना चाहिए जो सोचे समझे बिना सहजता से, बिना किसी विश्लेषण के, ऐसी भावनाओं को भड़काएँ जो आधुनिक समाज के विरुद्ध समाजवादियों के युद्ध के विभिन्न रूपों जैसी हों।" सोरेल विस्तार से कहता है कि "हड़ताल एक मिथक है जिसमें समाजवाद समाया है, अर्थात् छवियों का ऐसा समूह जो स्वतः ऐसी भावनाएँ भड़काएँ जो आधुनिक समाज के विरुद्ध किए गए उपायों का प्रतिरूप हों; हड़तालों से सर्वहारा वर्ग की गहन, भावप्रणव व अच्छी भावनाओं का खात्मा हुआ है, आम हड़ताल उन्हें एकजुट करती है, हरेक को ऐसी पैठ देती है कि वे अपने विशिष्ट संघर्षमय अतीत की दुःखद स्मृतियों को अस्त्र बना लेते हैं.." अतः संघवादियों के लिए हड़ताल का एक मनोवैज्ञानिक उद्देश्य है और हिंसा के साथ जुड़कर वह श्रमिकों में क्रान्तिकारी चेतना जगाती है। संघवादियों के साधनों में मिथक का प्रचार, हिंसा, हड़ताल, आम हड़ताल और तोड़-फोड़ शामिल है।

**बोध प्रश्न 4**

**नोटः** क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) श्रम संगठन आन्दोलन के विषय में अराजकतावादियों और संघवादियों के विचारों की चर्चा करें। उनमें क्या समानता और क्या विभिन्नता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

## 23.5 मार्क्सवादी - लेनिनवादी सिद्धान्त

मार्क्स अराजकतावादियों और संघवादियों का घोर विरोधी था। उसने फर्स्ट इंटरनेशनल में प्रोधोंवाद, बेकुनिनवाद और लैसेलवाद (Lassalleism) के विरुद्ध घोर संघर्ष किया। मार्क्स के लिए प्रोधों ऐसा क्षुद्र बूर्जुआ समाजवादी था जिसकी बड़ी लड़ाईयाँ प्रतिक्रियावादी सिद्धान्तों तक सीमित थी। 'वह गुणी प्रचारक था जो भावुक समाजवादी अपराध का प्रतिनिधि था।' वह दिलो-दिमाग व भोजन तक से क्षुद्र बूर्जुआ दार्शनिक अर्थशास्त्री था, जिसने एक प्रकाशवान आरोप, 'स्वामित्व चोरी है' के फार्मूले से बूर्जुआ का स्तर ऊँचा किया। प्रोधों स्वयं को श्रमिक वर्गों का दार्शनिक मानता था और निर्धनता के दर्शनशास्त्र पर उसने सशक्त सैद्धान्तिक तर्क प्रस्तुत किए। मार्क्स ने प्रोधों के निर्धनता के दर्शनशास्त्र का अपनी पुस्तक 'दर्शनशास्त्र की निर्धनता' में कटु आलोंचना की। एक अराजकतावादी के रूप में प्रोधों ने हड़तालों या मज़दूरों के आर्थिक संघर्ष को विशेष मूल्य प्रदान नहीं किया। मार्क्स के लिए वर्ग संघर्ष के हिस्से के रूप में इन संघर्षों का बहुत महत्व था जिसके माध्यम से सर्वहारा वर्ग राज्य संयंत्र पर काबू पाएगा। बैकुनिन ने अराजकतावादी परम्परा में ही 'राजनीति' का तिरस्कार

किया और चाहा कि श्रमिक केवल आर्थिक रूप ग्रहण करे। लोज़ोव्स्की (Lozovsky) बैकुनिन व मार्क्स के विचारों में अंतर करता है। वह लिखता है, "यहाँ हम देखते हैं कि बैकुनिन 'मात्र आर्थिक आन्दोलन' की बात करता है। वह मात्र आर्थिक संघर्ष के लिए विरोधी समाजों के निर्माण की बात करता है। वह कहता है कि श्रमिक अनभिज्ञ होते हैं इसलिए उन्हें कठिन समस्याओं में नहीं उलझाना चाहिए। ज्यादा से ज्यादा वे विरोध समर्थक समाजों के निर्माण को स्वीकार करता है।" इससे यह सिद्ध होता है कि बैकुनिन, प्रोधों से एक क़दम आगे था फिर भी उनकी दिशा एक ही थी। उसने यह नहीं जाना कि श्रम संगठन जन संगठन के केन्द्र हैं इसलिए वे जनता को सर्वहारा वर्ग की तानाशाही के संघर्ष के लिए तैयार करते हैं। वह मार्क्स की भांति श्रम संगठनों का महत्व नहीं जान पाया।

अराजकतावादियों - संघवादियों के विपरीत मार्क्स ने प्रतिपादन किया कि वर्गविहीन समाज की स्थापना के लिए श्रमिकों को राज्य पर नियंत्रण करना चाहिए। इस प्रकार सर्वहारा वर्ग के आम वर्ग संघर्ष में आर्थिक संघर्ष की भूमिका स्पट परिभाति की गई है। श्रमिक वर्ग के हाथों में श्रम संगठन एक 'उत्तोलक' (Lever) है जो उसे शोषक की राजनीतिक सत्ता के विरुद्ध संघर्ष में सहायक है। श्रमिक वर्ग के राजनीतिक आन्दोलन का अंतिम उद्देश्य राजनीतिक सत्ता प्राप्त करना है।

### 23.5.1 अराजकतावाद व मार्क्सवाद में अंतर

सर्वहारा वर्ग की तानाशाही श्रमिकों की अंतर्राष्ट्रीय एकता पर निर्भर करती है। अंतर्राष्ट्रीय कामगर संघ और फर्स्ट इंटरनेशनल में मार्क्स की भूमिका उसके इस विश्वास से जुड़ी थी कि अपने बंधन तोड़ने के लिए दुनिया भर के मज़दूरों को एक होना है। अतः श्रमिक वर्ग के सभी आन्दोलनों को श्रमिकों की एकता की स्थापना की दिशा में ले जाना है, मार्क्स के अनुसार, श्रमिक वर्ग के हित समान हैं और विभिन्न देशों के श्रमिकों के मध्य कोई मतभेद या विरोध नहीं है।

मार्क्स की श्रम संगठन विचारधारा अराजकतावादी-संघवादी विचारधारा से अलग है जो श्रम संगठन आन्दोलनों को राजनीतिक संघर्ष से अलग रखना चाहते हैं जबकि मार्क्स श्रमिक वर्ग के दिन प्रतिदिन के संघर्षों को बहुत महत्व देता है। मार्क्स ठोस हड़तालों के विषय में लिखता है और श्रमिकों की कार्यवाहियों के दर्जनों उदाहरण देता है और यह स्पष्ट करता है कि इन सबका काम के घंटों, मज़दूरी, श्रम कानूनों आदि पर क्या प्रभाव पड़ा है। बैकुनिन फैक्ट्री कानूनों में रुचि नहीं रखता क्योंकि उसके लिए आंशिक माँगों और अंतिम लक्ष्य में कोई सम्बन्ध नहीं है। वह समझता है कि प्रत्येक हड़ताल अंततः क्रान्ति में परिणत हो जाएगी। मार्क्स उस संपूर्ण क्षेत्र में रुचि रखता है जिसके अंतर्गत श्रम संगठन सक्रिय हो सकते हैं। लोज़ोव्स्की के अनुसार, "इसका तात्पर्य है कि क्रान्तिकारी मार्क्सवादियों के हड़ताली तौर तरीकें अराजकतावादियों और सुधारवादियों के हड़ताली तौर तरीकों से नितान्त भिन्न हैं।"

### 23.5.2 श्रम संगठन आन्दोलन पर लेनिन के विचार

सर्वहारा वर्ग के अन्तर्राष्ट्रीयवाद, वर्ग संघर्ष व सर्वहारा वर्ग की तानाशाही की मार्क्सवदी परम्परा का अनुसरण करते हुए लेनिन ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो श्रमिक वर्ग तथा श्रमिक वर्गीय दल के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध पर केन्द्रित था। लेनिन की रचना "क्या किया जाना चाहिए" उसके श्रम संगठन दर्शन का सार है। इसमें वह श्रम संगठनवाद के मार्क्सवादी लक्ष्य पाने के तौर तरीकों का विवेचन करता है। लेनिन का विचार था कि श्रमिकों का आर्थिक संघर्ष विशेष सफलता प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि "आर्थिक संघर्ष केवल सरकार के श्रमिक वर्ग के प्रति दृष्टिकोण को जानने के लिए श्रमिकों को 'प्रेरित' करता है। अतः हम 'आर्थिक संघर्ष को कितना भी राजनीतिक प्रकृति में ढालने' की कोशिश करें, हम श्रमिकों की राजनीतिक चेतना को सामाजिक-लोकतांत्रिक-राजनीतिक चेतना के स्तर तक नहीं ला सकते यदि हम आर्थिक संघर्ष के दायरे तक सीमित रहें क्योंकि यह दायरा बहुत संकीर्ण है।" लेनिन का विचार था, श्रमिकों में वर्ग चेतना केवल बाहर से लाई जा सकती है अर्थात् आर्थिक संघर्ष के बाहर, मज़दूरों और मालिकों के सम्बन्ध क्षेत्र के बाहर से।" लेनिन स्पष्ट करते हैं कि, "सभी देशों का इतिहास साक्षी है कि मात्र अपने प्रयासों से श्रमिक वर्ग

केवल श्रम संगठन चेतना ही जागृत कर सका है, अर्थात् संगठनों की एकजुटता, मालिकों से टकराव तथा सरकार को आवश्यक कानून बनाने के लिए विवश करना आवश्यक है, परन्तु संपत्तिवान वर्ग के शिक्षित, प्रतिनिधियों, बुद्धिजीवियों द्वारा प्रस्तुत दार्शनिक, ऐतिहासिक व आर्थिक सिद्धान्तों से ही समाजवाद के सिद्धान्त का विकास हुआ है।" इसलिए लेनिन का मानना था कि समाजवादी क्रान्ति के लिए श्रमिकों की राजनीतिकी चेतना अति आवश्यक हैः परन्तु श्रम संगठन गतिविधि तक सीमित रहने पर वह मात्र 'अर्थवाद' तक ही ले जाएगी। श्रमिक वर्ग चेतना वास्तविक राजनीतिक चेतना नहीं हो सकती जब तक कि श्रमिकों को सभी प्रकार के अत्याचार, उत्पीड़न, हिंसा, व दुराचार का जवाब देने के लिए प्रशिक्षित न किया जाए। लेनिन ने यह भी चेताया कि मात्र सैद्धान्तिक वँ किताबी ज्ञान पर्याप्त नहीं है। सामाजिक लोकतन्त्रवादियों को निरन्तर श्रमिक वर्ग व उनकी कार्यवाहियों के संपर्क में रहना होगा। वह लिखते हैं, "जो श्रमिक वर्ग की निगाह और चेतना पूर्ण रूप से या मुख्य रूप से अपने ऊपर ही केन्द्रित करते हैं वह असली सामाजिक लोकतंत्रवादी नहीं है क्योंकि श्रम वर्ग का स्वःज्ञान घनिष्ठ रूप से केवल सैद्धान्तिक ज्ञान से न जुड़ा होकर आधुनिक समाज के विभिन्न वर्गों के सम्बन्धों के व्यावहारिक ज्ञान से जुड़ा है। और यह ज्ञान राजनीतिक जीवन के अनुभव से ही प्राप्त होता है।" लेनिन ने कहा, "एक सामाजिक लोकतन्त्रवादी बनने के लिए श्रमिक के मस्तिक में भूस्वामी और पादरी, उच्च शासनाधिकारी व कृषक, विद्यार्थी व बदमाश की आर्थिक प्रकृति तथा सामाजिक व राजनीतिक लक्षणों की स्पष्ट तस्वीर होनी चाहिए, उसे समझना चाहिए कि कुछ संस्थाओं द्वारा किन और किस प्रकार विभिन्न हितों को परिलक्षित किया जाता है। पर यह 'स्पष्ट तस्वीर' किसी पुस्तक द्वारा हासिल नहीं की जाती। यह केवल संजीव उदाहरणों और अपने आस पास होने वाली घटनाओं के प्रत्यक्ष दर्शन से प्राप्त की जा सकती है। यह संपूर्ण राजनीति परिदृश्य क्रान्तिकारी गतिविधियों में जनता को प्रशिक्षित करने की आवश्यक व मूलभूत शर्त है।

लेनिन ने श्रम संघवाद की सुधारवादी अवधारणा पर घोर प्रहार किया। जिसके अनुसार श्रमिकों की श्रम संगठन गतिविधियाँ स्वतः उन्हें राजनीतिक चेतना की ओर ले जाएंगी। उसका विचार था कि श्रम वर्ग संघर्षों के लिए स्पष्ट राजनीतिक सूझ-बूझ आवश्यक है और यह समझ श्रम वर्ग संघर्षों से प्रत्यक्ष व सक्रिय सम्बन्ध के बिना आ नहीं सकती।

**बोध प्रश्न 5**

**नोटः** क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) श्रम संगठनों के वर्ग संघर्ष रूप के विषय में मार्क्स के क्या विचार थे?

.....

.....

.....

.....

2) लेनिन श्रमिक वर्ग संघर्ष व श्रमिक वर्गीय दल के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध कैसे स्पष्ट करता है?

.....

.....

.....

.....

## 23.6 नव वामपंथी विचार

सुधारवादियों का दावा है कि उन्होंने मार्क्सवाद को आधुनिक पूँजीवाद की बदलती हुई प्रकृति के अनुसार सुधारा है जिसका मार्क्स भी अपने जीवन काल में पूर्वानुमान नहीं कर पाया था। आधुनिक सामाजिक लोकतन्त्रवादियों ने सर्वहारा वर्ग की तानाशाही की मार्क्सवादी अवधारणा का त्याग कर दिया है। उनका विचार है कि परम्परागत मार्क्सवाद कालातीत हो गया है इसलिए उस पर पुनर्विचार, उसका सुधार और उसे पूरा करना होगा। उनके अनुसार मार्क्सवाद में निम्नांकित खामियाँ हैं:

1) वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त स्वयं में सही है, परन्तु श्रम संगठनों के विकास और लोकतन्त्र की स्थापना से इसका महत्व समाप्त हो गया है;

2) क्रान्ति एक पूर्ण अवधारणा है; यह निम्न स्तर के सामाजिक विकास के बराबर है लोकतान्त्रिक राज्य, क्रान्ति और क्रान्तिकारी संघर्ष का निवारण करता है।

3) लोकतन्त्र पूँजीवाद से समाजवाद में शान्तिपूर्ण परिवर्तन का श्रमिकों को आश्वासन देता है अतः सर्वहारा वर्ग की तानाशाही आवश्यक नहीं है।

4) श्रमिकों की निरूपायता का सिद्धान्त कभी सही था, आज नहीं है।

5) मार्क्स के युग में शायद यह सच था कि श्रम संगठनों में दल की नेतृत्त्व परक भूमिका है परन्तु आज दलीय राजनीतिक तटस्थता ही श्रम संगठन आन्दोलन का प्रभावी विकास सुनिश्चित कर सकती है।

श्रम संघवाद के इस वैकल्पिक दर्शन या सुधारवाद के कई रूप हैं : राज्य समाजवाद, विकासवादी समाजवाद, सामूहिकतावाद, गिल्ड समाजवाद, फेबियनवाद तथा लोकतान्त्रिक समाजवाद इत्यादि। कुछ मुद्दों में उनके बीच छोटे मोटे अंतर हैं परन्तु वे इस विश्वास पर आधारित है कि श्रमिकों को चुनावों में भाग लेकर श्रम का संगठन करके, सामाजिक लोकतान्त्रिक दलों के निर्माण व सरकारी प्राधिकरणों का प्रयोग कर श्रमिकों के लाभार्थ उपाय करके लोकतान्त्रिक संस्थाओं का प्रयोग करना चाहिए। सत्ता के बाहर रहकर विपक्षी दल के रूप में श्रमिकों को सहूलियतें दिलाने के लिए इसे सरकार पर दबाव डालना चाहिए। इस प्रकार धीरे-धीरे समाजवाद की स्थापना और शांतिपूर्ण तरीके से समाजवादी राज्य पूँजीवादी राज्य का स्थान ले लेगा।

### 23.6.1 सुधारवादियों की लेनिन द्वारा आलोचना

यह कहने की बात नहीं कि मार्क्सवाद के पूरक के रूप में सुधारवाद से लेनिन को गंभीर आपत्तियाँ थी। उसने सुधारवादियों को मौका परस्त और पूँजीपतियों का पिठ्ठू कहा। लेनिन का मानना था कि साम्राज्यवाद के प्रचलन से औपनिवेशिक देशों के शोषण द्वारा साम्राज्यवादियों ने अत्यधिक लाभ अर्जित किया। अपने कोष में से लाभ का एक हिस्सा टुकड़ों के रूप में उन्होंने तथाकथित श्रम वर्गीय नेताओं - श्रमिक कुलीनवर्ग में बाँट दिया। सामाजिक लोकतन्त्र के नेताओं द्वारा विकसित पूँजीवादी देशों में श्रम वर्ग की बेहतर दशाओं का हवाला देने से इन श्रमिक नेताओं की मौकापरस्ती ही सामने आई जिन्होंने उपनिवेशों के साम्राज्यवादी शोषण से सहयोग कर लाभ उठाया है।

### 23.6.2 नव वामपंथ

नवीन वामपंथी विचारक मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त का खंडन करते हैं कि पूँजीवाद के विकास के साथ-साथ श्रमिक वर्ग की दशा बदहाल होती जाएगी। उनका मानना है कि वास्तव में विकसित पूँजीवाद में श्रमिक वर्ग की शक्ति में वृद्धि हुई है उनका अब शोषण नहीं होता बल्कि अपनी संगठित शक्ति द्वारा वे मालिकों और राजनीति व्यवस्था पर भारी पड़ते हैं। वे सत्ता के नये अधिकारी (New Men of Power) हैं।

नवीन वाम का विचार है कि विकसित पूँजीवाद में श्रमिक क्रान्तिकारी नहीं होते, उनका बूर्जुआकरण

हो गया है और उन पर उपभोक्तावाद हावी हो गया है। मार्क्यूज़ (Marcuse) के अनुसार, यह समाज बड़े उद्यम और श्रमिक वर्ग के गठबन्धन पर आधारित है, ऐसा श्रमिक वर्ग जिसे नित नई वस्तुएँ और ग़ैर-ज़रूरी उपकरण खरीदने के लिए पागल बना दिया गया है जिसे उनकी सापेक्ष अमीरी ने संभव बनाया है। मार्क्यूज़ का मानना है कि श्रम वर्ग अब पूँजीवाद का विरोधी नहीं है बल्कि उसके साथ मिलकर वर्तमान व्यवस्था का संरक्षण कर रहा है। उसके अनुसार 'जो वर्ग एक बार पूँजीवादी व्यवस्था के घोर विरोधी थे अब उसमें ज्यादा से ज्यादा समाहित हो रहे हैं।'

राजनीति में श्रम संगठनों को क्या भूमिका निभानी चाहिए। निःसंदेह इस पर मतभेद हैं। पूँजीवादी व्यवस्था को श्रम संगठनों के अस्तित्व को आज्ञा देने के लिए विवश किया गया है, परन्तु कुछ विचारकों द्वारा, जो पश्चिमी लोकतान्त्रिक व्यवस्था को आदर्श और अवश्यभावी मानते हैं, इस बात पर बल दिया गया है कि श्रम संगठन केवल सौदेबाज हैं और राजनीति में उनकी भूमिका श्रमिकों के लिए कुछ सहूलियतें हासिल करने के लिए राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव डालने तक सीमित है। दूसरी ओर, मार्क्सवादी इस बात पर ज़ोर देते हैं कि श्रमिकों का राजनीतिकरण किया जाना चाहिए, कि श्रमिक संगठन केवल श्रमिकों के लिए सहूलियतें हासिल करने का साधन मात्र नहीं है वरन् उन्हें पूँजीवादी व्यवस्था को समाजवादी व्यवस्था में रूपान्तरित करना होगा और समाजवादी समाज का निर्माण करना होगा। अतः विश्व पूँजीवादी विश्व, समाजवादी विश्व और नवोदित देशों जिन्होंने हाल ही में विदेशी शासन को उखाड़ फेंका है, में बंट गया है। इन देशों में श्रम संगठनों की क्या भूमिका है, क्या वह आर्थिक भूमिका तक सीमित हैं और काम के घंटे कम करने, मज़दूरी बढ़ाने व कुछ सुविधाओं के लिए सरकार पर दबाव डालने तक सीमित हैं। इन औपेनिवेशिक देशों में स्थिति भिन्न थी। औपनिवेशिक शासकों द्वारा निर्दयी शोषण के कारण समाज के अन्य वर्गों के साथ साथ श्रमिक वर्ग को भी घोर कष्टों का सामना करना पड़ा। इसलिए अन्य तबकों के साथ-साथ वे भी स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़े। इसलिए भारत जैसे देशों में अन्य वर्गों के साथ-साथ श्रम संगठन भी राष्ट्रीय आन्दोलन में जुड़े थे। यह राजनीतिक आन्दोलनों से श्रम संगठनों के सूत्रों का असाधारण लक्षण था।

**बोध प्रश्न 6**

नोटः क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) श्रम संगठनों के मार्क्सवादी सिद्धान्त की बेहतरी के रूप में सुधारवाद की जाँच करो।

.....

.....

.....

.....

.....

## 23.7 विकासशील देशों में श्रमिक संघ आन्दोलन की विशिष्टताएँ

साम्राज्यवाद के भीतर के विरोधाभास ने उपनिवेशों में औद्योगीकरण के लिए साम्राज्यवादियों को विवश किया। भारत में भी औपनिवेशिक शासकों के हतोत्साहित करने के बावजूद औद्योगीकरण हुआ। चाहे बेमन से, मंद गति से, सीमित या असंतुलित ही हो, साम्राज्यवादियों को भारत में औद्योगीकरण करना ही पड़ा। ब्रिटिश बूर्जुआ ने भारत में रेलवे उद्योग आरंभ किया ताकि कच्चा माल और मंडियों तक पहुँच प्राप्त की जा सकें। क्यों और कैसे का उत्तर मार्क्स ने दिया। मैं जानता हूँ कि अंग्रेज़ी मिल मालिक भारत में रेलवे की शुरूआत करना चाहते थे ताकि कम कीमत पर अपने उत्पाद के लिए कपास व अन्य कच्चा माल हासिल कर सकें। पर जब एक बार देश की

गति में मशीनरी प्रयुक्त कर दी जाए विशेष रूप से रेलवे की आवश्यकताओं के लिए तो उद्योग की उन शाखाओं में भी मशीनरी का प्रयोग आवश्यक हो जाता है जो तात्कालिक रूप से रेलवे से न भी जुड़े हों।" अतः अंग्रेज़ी बूर्ज़ुआ चाहे कुछ भी करने को विवश था उनसे आम जनता का उत्थान या सामाजिक दशाओं की बेहतरी नहीं हो सकती थी क्योंकि यह केवल उत्पादन शक्तियों के विकास पर ही नहीं लोगों द्वारा उसके उपयोग पर निर्भर करता है।

अतः साम्राज्यवाद की यह अवधारणा, उभरते हुए देशी बूर्ज़ुआ से इसका सम्बन्ध, श्रमिक वर्ग के प्रति इसका दृष्टिकोण, देशी बूर्ज़ुआ का श्रमिक वर्ग व साम्राज्यवादियों के प्रति दृष्टिकोण, श्रमिक वर्ग का देशी बूर्ज़ुआ और साम्राज्यवादियों को जवाब बहुत जटिल हैं। अतः भारत में श्रम संघवाद पूर्ववर्त्ती उपनिवेशों की सामाजिक-आर्थिक वास्तविकता की जटिलता को परिलक्षित करता है। तब भी राजनीतिक तत्व श्रम संगठन आन्दोलन पर गहन प्रभाव डालते हैं। भारतीय श्रम संगठन आन्दोलन के विचारक साम्राज्यवाद की भूमिका की अवहेलना करके श्रम संगठन आन्दोलन की प्रकृति को जटिल बना देते हैं। वह श्रमिकों की सामाजिक पृष्ठभूमि उनके धर्म, जाति, आयु, वित्तीय स्थिति, परिवार का आकार इत्यादि को ध्यान में रखते हैं उन सामाजिक आर्थिक ताकतों को नहीं जो उन जटिल दशाओं के द्वारा उत्पन्न होती हैं, जो 'श्रम व सामाजिक व्यवस्थापन' की देन हैं, जो वास्तव में राजनीति तत्वों द्वारा निर्धारित होते है। ग़ैर-मार्क्सवादी पश्चिमी विद्धान विकसित पूँजीवादी देशों में श्रम संगठनों के राजनीति से सम्बन्ध उसी सीमा तक मानते हैं जहाँ तक वे समूहों के रूप में अपने हितों के लिए सरकार की आर्थिक नीति के प्रति सचेत होते हैं। औपनिवेशिक देशों में, यह एक तथ्य है कि राजनीतिज्ञों ने श्रमिकों को श्रम संगठन बनाने के लिए सक्रिय किया और इन श्रम संगठनों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सुब्रतो घोष के अनुसार, "बीस के दशक में, श्रम संगठन आन्दोलन राष्ट्रवादियों और मानवतावादियों से अत्यधिक प्रभावित था।" वास्तव में, अल्प विकसित देशों में, जहाँ श्रम संगठनों का हाल ही में जन्म हुआ है, हमारा अनुभव सिद्ध करता है कि शुरू में श्रम संगठनवाद का जन्म उन पर पड़ने वाले प्रत्यक्ष दबावों से होता है, जो उनके पहले से ही निम्न जीवन स्तर को और कमज़ोर करते हैं, न कि कानून निर्माण प्रक्रिया में भागीदारी की उनकी इच्छा से।" कैर और सीगल (Kerr and Siegal) के इस विचार का खंडन घोष ने किया है कि श्रमिकों द्वारा श्रम संगठनों का निर्माण 'देश की कानून निर्माण की प्रक्रिया में भाग लेने' के लिए किया जाता है। यह विकसित देशों के लिए तो सही हो सकता है विकासशील देशों के लिए नहीं। जिन विद्वानों ने समाजों को केवल 'मुक्त समाजों' या 'सर्वाधिकारवादी समाजों' के रूप में देखा है, उन्होंने उस विशाल समाज की अनदेखी की है जो हाल तक साम्राज्यवादी ताकतों के अधीन था। वह मुक्त समाजों में श्रम संगठन की बात करते हैं और यह मानते हैं कि स्त्री और पुरुषों में स्वयं को संगठित करने के अधिकार की अभिव्यक्ति है ताकि सामूहित कार्यवाही द्वारा उनके हितों का संरक्षण और संवर्धन हो सके। पर यह नहीं माना जा सकता कि श्रम संगठनों के अस्तित्व मात्र से ही दक्षिण पंथी व वामपंथी समाजों ने अपने उद्देश्यों के लिए श्रम संगठनों का प्रयोग किया ही है।

**बोध प्रश्न 7**

**नोटः** क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) विकासशील देशों में श्रम संगठनों की क्या विशिटताएँ हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

## 23.8 विभिन्न देशों में श्रमिक संघ आन्दोलन

**जी.डी. एच. कोल** के अनुसार "श्रम संगठनवाद की आकृति केवल आर्थिक विकास की अवस्था से ही तय नहीं होती वरन् उस सामान्य संरचना से भी होती है जिसमें उसे कार्यरत होना होता है। विकसित देशों में प्रचलित श्रम संगठनवाद की संरचना व लक्ष्य अलग होते हैं। उन्हें दबाव समूह माना जाता है राज्य संरचना का हिस्सा नहीं। उन्हें अराजनीतिक माना जाता है। समाजवादी देश श्रम संगठनों की राजनीतिक भूमिका पर बल देते हैं, वह राज्य संरचना का हिस्सा होते हैं और उन्हें समाजवादी रूपान्तरण का कार्य करना होता है। विकासशील देशों में श्रम संगठन आन्दोलन का जन्म और विकास अलग परिस्थितियों में हुआ इसलिए उनकी प्रकृति भी भिन्न है।

### 23.8.1 संयुक्त राज्य अमेरिका में श्रमिक संघ आन्दोलन

संयुक्त राज्य अमेरिका में श्रम संगठन आन्दोलन अमेरिकी समाज का स्वीकृत व स्थाई हिस्सा है। दशाब्दियों के तीव्र संघर्ष के बाद संगठित श्रम अब आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक जीवन का मान्य तथ्य बन चुका है।

उद्योगों के विकास के बाद अमेरिका के श्रमिक व फैक्ट्री मज़दूरों ने यह जान लिया कि सामूहिक कार्यवाही द्वारा ही वे बराबरी के आधार पर सौदेबाजी कर सकते हैं। अतः उन्होंने संगठित होना शुरू किया।

"फिलेडैल्फिया के छापेखाने के कामगर" वह पहला श्रम संगठन था जो 1786 में न्यूनतम $ 6 प्रति सप्ताह की मज़दूरी के लिए हड़ताल पर गया। छः वर्ष बाद क्वेकर शहर के मोचियों ने एक स्थाई संगठन बनाया। दो दशाब्दियों में छुट-पुट संगठन बनते रहे और 1827 में ही श्रम आन्दोलन प्रकट हुआ और विभिन्न व्यवसायों से जुड़े श्रमिकों ने एक केन्द्रीकृत श्रम संगठन का निर्माण किया - **द मैकेनिक्स यूनियन ऑफ ट्रेड एसोसिएशन**। इसके बाद न्यूयार्क, बोस्टन व अन्य स्थानों पर केन्द्रीकृत निकाय उभरने लगे।

गृह युद्ध के दौरान फौजों को सामग्री पँहुचाने के लिए नई फैक्ट्रियों की स्थापना हुई। देश भर में बाज़ार का विस्तार होने लगा। राष्ट्रीय मंडी के विकास से राष्ट्रीय व स्थानीय स्तर पर संगठित होने के लिए मज़दूरों को बल मिला। धीरे-धीरे अन्य संघ बनने लगे। 1869 में एक और राट्रीय श्रम संगठन बना - **द राइट्स ऑफ लेबर**। इसका महत्व बढ़ने लगा पर 1894 तक इसका ह्रास आरंभ हो गया क्योंकि एक और संघ अमेरिकन फैडरेशन ऑफ लेबर (ए. एफ. एल.) 1886 में स्थापित हुआ। इसका अध्यक्ष सैम्ऊल गाम्पर्स था। 1905 में अन्य सशक्त श्रम संगठन बने जैसे इंडस्ट्रियल वर्क्स ऑफ द वर्ल्ड जो फ्रांसीसी संगठनवाद के हिमायती थे।

1935 में जॉन एल लूइस ने ए. एल. अल. के अंदर औद्योगिक संगठन बनाया कमेटी ऑन इंडस्ट्रियल ऑर्गेनाइज़ेशन। तत्पश्चात् ए. एल. अल. और इस कमेटी के बीच मतभेद हो गए जिस कारण इस कमेटी से जुड़े दो नेताओं को निकाल दिया गया। बाद में इस कमेटी ने अपना बदलकर कांग्रेस ऑफ इंडस्ट्रियल आरगेनाइज़ेशन (सी. आई. ओ.) रख लिया। राष्ट्रीय स्तर पर अमेरिका में यही दो संघ ए. एल. अल. और सी. आई. ओ. कार्यरत हैं। वे अक्सर एक दूसरे के निकट आने की चेष्टा करते हैं। यह दोनों संगठन किसी भी राजनीतिक दल से स्पष्ट रूप से जुड़े नहीं है। परन्तु समय समय पर राष्ट्रपति पद के प्रत्याशी के लिए अपना समर्थन, राज्य की विशिष्ट नीतियों के पक्ष या विपक्ष में विचार प्रकट करते रहते हैं तथा श्रम संगठनों के अंतर्राष्ट्रीय परिसंघ से जुड़े हैं।

### 28.8.2 यूनाइटिड किंगडम में श्रमिक आन्दोलन

ब्रिटिश श्रमिक आन्दोलन दुनिया में सर्वाधिक प्राचीन है। औद्योगीकरण के उदय और पूँजीवाद के विकास से श्रमिकों ने यह जान लिया था कि वे मालिकों की शक्ति का अकेले मुकाबला नहीं कर

सकते और उन्हें सामूहिक रूप से सौदेबाजी करनी होगी। मालिक नहीं चाहते थे कि श्रमिक एक दूसरे से हाथ मिलाएँ और संगठन स्थापित करें। जी. डी. एच. कोल ने लिखा है कि "अठारहवीं शताब्दी में ऐसे कई कानून थे जो श्रमिकों पर रोक लगाते थे। श्रमिकों को विभिन्न प्रकार से उत्पीड़न और दमन का सामना करना पड़ा परन्तु सब बाधाओं के बावजू वे संगठन का अधिकार पाने मे सफल हुए।"

विचित्र बात यह है कि आरंभ में आधुनिक उद्योगों के भय से ही श्रमिकों की संगठनबाजी शुरू हुई। श्रमिकों को भय था कि उत्पादन प्रक्रिया के मशीनीकरण से उन्हें नौकरियों से हाथ धोना पड़ेगा। इस कारण श्रमिकों ने मशीनें तोड़ दी। इस प्रकार के विरोध को लुडिज़्म (Luddism) कहा गया और राज्य ने इसे आड़े हाथों लिया। अंततः श्रमिकों ने इस तथ्य से समझौता कर लिया कि आधुनिक उद्योग स्थाई हैं और उनके साथ सामंजस्य स्थापित करना ही पड़ेगा फलतः वे संगठनबाजी के नये चरण में प्रवेश कर गए। बेहतर मज़दूरी व सुविधाओं के लिए संघर्ष के साथ साथ मज़दूरों ने राजनीतिक सत्ता में भागीदारी के महत्व को भी जान लिया। 1830 में नेशनल एसोसिएशन फॉर प्रोटैक्शन ऑफ लेबर की स्थापना हुई। 1834 में राबर्ट अवन ने ग्रैन्ड नेशनल कन्सोलिडेटड ट्रेड यूनियन की स्थापना की।

राजनीतिक प्रक्रिया द्वारा मज़दूरों के हितों की रक्षा के लिए माँगों का एक चार्टर प्रस्तुत किया गया। इसे चार्टिस्ट आन्दोलन नाम दिया गया।

वर्तमान काल में ब्रिटेन में श्रमिकों की शीर्षस्थ संस्था ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस है। अधिकतर संगठन इससे जुड़े हैं। यह स्वयं को राजनीतिक दलों से अलग रखती हैं। फिर भी, आम तौर पर लेबर पार्टी को अधिकांशतः श्रमिक संगठनों से समर्थन मिलता है जबकि व्यवसायी कंज़रवेटिव पार्टी के समर्थ हैं। ब्रिटेन में अमेरिका की भांति श्रमिक संगठनवाद का 'आर्थिक' आधार है।

### 28.8.3 समाजवादी राज्यों में श्रमिक संगठन आन्दोलन : पूर्व सोवियत संघ

पूँजीवादी व्यवस्थाओं में श्रमिक संगठनों को दबाव समूह माना जाता है जबकि समाजवादी देशों मे इनकी भूमिका बिल्कुल अलग होती है। समाजवादी देशों में श्रमिक संगठनों का उद्देश्य समाजवादी उत्पादन प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी सुनिश्चित करना है। इस कारण विशाल सोवियत संघ में श्रमिक संगठन सर्वाधिक महत्वपूर्ण सामाजिक शक्ति थे। सोवियित संघ के श्रमिक संगठन श्रमिकों को उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रेरित करने, जनता को समाजवादी अनुशासन का शिक्षण देने, काम और समाजवादी संपत्ति के प्रति जनता के दृष्टिकोण को बदलने और औद्योगिक व कार्यालय श्रमिकों में अपने देश के स्वामी होने की भावना जगाने का काम करते थे।

श्रमिक संगठन आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास यह दर्शाता है कि रूसी श्रमिक संगठन नवीन संगठन है। रूसी साम्राज्य में पूँजीवाद का आरंभ देर से हुआ और श्रमिकों के रक्षक संघों का उदय भी देरी से ही हुआ। पहली अखिल रूसी ट्रेड यूनियन कांफ्रेंस अक्तूबर 1905 में हुई जिसमें अधिकतर मास्को के संगठनों के प्रतिनिधि शामिल थे। रशियन अधिकारियों द्वारा इनकी गतिविधियों का क्रूर दमन किया गया। फलतः रूसी ताकत का मुकाबला करना कठिन हो गया और 1916-17 तक इन संगठनों की संख्या 1500 तक रह गई। मार्च की क्रान्ति के बाद श्रमिक संगठनों की परिद् मॉस्को व पेत्रोग्राद में स्थापित हुई। पेत्रोगाद, मॉस्को व अन्य शहरों में संघ श्रमिकों ने अक्तूबर क्रान्ति के बाद सत्ता पर अधिकार कर लिया।

1918 में पेट्रोगाड में ऑल रशियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस की पहली कांग्रेस में इसकी भूमिका पर विचार किया गया। नई आर्थिक नीति के आरंभ किए जाने के बाद संघवादी उद्योग के प्रबन्ध में भागीदार व सलाहकार बन गए। मार्च की क्रान्ति के बाद कई छोटे संगठन बन गए थे बाद में इन्हें एक केन्द्रीकृत संगठन में इकट्ठा कर दिया गया था जिसे ऑल यूनियन सैन्ट्रल काऊन्सिल ऑफ ट्रेड यूनियन (ए.सी.सी.टी.यू.) या सैन्ट्रल काऊन्सिल ऑफ ट्रेड यूनियन (सी.सी.टी.यू.) नाम दिया गया।

नोटः क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) अमेरिका, ब्रिटेन व पूर्ववर्ती सोवियत संघ के प्रमुख राष्ट्रीय श्रम संघ कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

## 23.9 भारतीय श्रमिक संघ आन्दोलन

विकासशील देशों में श्रमिक संघ आन्दोलन विकसित पूँजीवादी व समाजवादी देशों के श्रमिक संघ आन्दोलन से बिल्कुल अलग ढंग से विकसित हुआ। इन उत्तर-औपनिवेशिक देशों में श्रमिक संघ आन्दोलन की अनेक विशेषताएँ हैं।

यहाँ श्रमिक संघ आन्दोलन की एक विशेषता इसका देरी से विकास है। वास्तव में राष्ट्रीय स्तर पर यह आन्दोलन प्रथम विश्व युद्ध के बाद ही आरंभ हुआ। उद्योगों के देरी से पनपने के कारण श्रमिकों की ग्रामीण पृष्ठभूमि है और औद्योगिक संस्कृति उनके लिए नई है। आमतौर पर औपनिवेशिक शासन के दौरान, श्रमिक संगठन स्वतन्त्रता संघर्ष की प्रथम पंक्ति में थे। इसलिए श्रमिक संघ गतिविधियों के अतिरिक्त देश की राजनीति में भी खूब संलग्न थे।

भारतीय श्रमिक संघ आन्दोलन एक पूर्ववर्त्ती औपनिवेशिक राज्य में श्रमिक संघ आन्दोलन की विशेष प्रकृति को दर्शाता है।

प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व भारत में श्रमिक संगठनवाद न के बराबर था। आमतौर पर कुछ संगठन बने पर वे थोड़े समय तक जीवित रहे। युद्ध के दौरान श्रमिकों को आधुनिक श्रमिक संगठनों की तर्ज़ पर संगठित करने का प्रयास किया गया ताकि भारत का अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन में प्रतिनिधित्व किया जा सके अतः 1920 में ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (ए. आई. टी. यू. सी.) का निर्माण हुआ।

ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध थे। इसके कई अध्यक्ष राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय थे। स्वतंत्रता से पूर्व यह श्रमिकों का प्रमुख संगठन था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भाँति जो विभिन्न विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करता था, ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस में भी श्रमिक संगठनवाद की विभिन्न पद्धतियाँ एक श्रमिक संघ में विलीन हो गई थी। कई बार तीव्र मतभेदों के कारण फूट भी पड़ी। गाँधीजी ने अपनी सर्वोदय की विचारधारा के आधार पर श्रमिक संगठन आन्दोलन का प्रतिपादन किया। अहमदाबाद टैक्सटाइल यूनियन या मज़दूर महाजन सभा ऐसा ही श्रमिक संगठन था जो औद्योगिक सम्बन्धो पर गाँधीवादी दर्शन का प्रतिनिधित्व करता था।

स्वतन्त्रता के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में फूट पड़ गई। जैसे राष्ट्रीय आन्दोलन में कई विचारधाराएँ बनी वैसे ही श्रमिक संगठन आन्दोलन भी विभिन्न श्रमिक संगठनों में बँट गया। ऑल

इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस विभिन्न श्रमिक संगठनों में बँट गया जो किसी न किसी दल से घनिष्ठ रूप से जुड़े हैं। इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से, भारतीय मज़दूर संघ भारतीय जनता पार्टी से, अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस भारत की कम्यूनिस्ट पार्टी से, सेन्टर फॉर इंडियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस कम्यूनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी से तथा हिन्द मज़दूर पंचायत और हिन्द मज़दूर सभा समाजवादियों से जुड़े हैं। कुछ अन्य श्रमिक संगठन भी हैं जो किसी न किसी राजनीतिक दल से जुड़े हैं।

अतः भारत जैसे विकासशील देश में श्रमिक संगठन आन्दोलन की महत्वपूर्ण विशेषता उसकी राजनीतिक संलग्नता है।

**बोध प्रश्न 9**

नोटः क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) भारत में श्रम संगठन आन्दोलन की राजनीतिक प्रकृति किस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में ढूंढी जा सकती है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

## 23.10 सारांश

अपने हितों की रक्षा के लिए श्रमिक वर्ग स्वयं को श्रम संघों में संगठित कर लेते हैं। श्रमिकों को स्वयं को संगठित करने के अधिकार की प्राप्ति के लिए दीर्घ काल तक संघर्ष करना पड़ा। श्रमिक संगठनों के उद्देश्यों, राजनीति से उनके सम्बन्धों तथा वर्ग चेतना के सम्बन्ध में विविध विचार प्रस्तुत किए गए हैं। फलतः श्रमिक संगठनों से जुड़े विविध सिद्धान्त है जैसे व्यवहारवादी, अराजकतावादी, श्रम संघवादी, मार्क्सवादी व लेनिनवादी तथा नवीन वाम सिद्धान्त। अधिकांशतः यह सिद्धान्त विकसित देशों या समाजवादी देशों की सामाजिक वास्तविकता को प्रतिबिम्बित करते हैं। विकासशील देशों के श्रमिक संगठन आन्दोलन भिन्न प्रकार के होते हैं। भारत में श्रमिक संगठन राष्ट्रीय आन्दोलन से उदय हुए और राजनीति से इनका गहरा सम्बन्ध है। यहाँ श्रम संगठनों की बहुलता है।

## 23.11 शब्दावली

**अराजकतावादी** : व्यक्ति जो इस सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं कि प्रत्येक प्रकार की सरकार बुरी और अत्याचारी हैं। इसलिए राज्यों को समाप्त कर देना चाहिए और व्यक्तियों के मुक्त संगठन होने चाहिए जो बिना हथियारों के स्थापित किया जा सकें।

**बूर्जुआ** : एक शब्द जो मार्क्सवादी साम्यवादियों ने स्वामियों (कृषकों को

छोड़कर), पूँजीपतियों, वस्तु-निर्माताओं, व्यापारियों, व्यक्ति जो अपना व्यापार करते हैं, और व्यक्ति जो उदार व्यवसाय करते हैं के लिए प्रयोग किया है।

वर्ग-संघर्ष : वर्तमान समय में विभिन्न वर्गों के बीच संघर्ष, विशेषतयाः सर्वहारा और बूर्जुआ वर्गों के बीच में संघर्ष जो उनके अपने हितों के संरक्षण के लिए होता है।

सर्वहारा : लोगों का एक ऐसा वर्ग, जो बहुत कम कमाते हैं और जिनके पास अपनी कोई सम्पत्ति नहीं होती है, जो अपने श्रम को बेचने पर निर्भर रहते हैं।

## 23.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें


अहमद, मुखगर, *ट्रेड यूनियन एन्ड लेबर डिस्प्यूट्स इन इंडिया,* 1935।

चैटर्जी राखरी, *वर्किंग क्लास एन्उ नेशनलिस्ट मूवमैंट इन इंडिया,* द क्रिटीकल ईयर्स, नई दिल्ली, 1984।

क्लार्क, टॉम, *ट्रेड यूनियनिज़्म अंडर कैपिटलिज़्म,* न्यूयार्क 1977।

कोल, जी. डी. एच, *इन्ट्रोडक्शन टू ट्रेड यूनियन मूवमैंट,* लंदन 1962।

क्राऊच, हैरल्ड, *ट्रेड यूनियन्स एण्ड पॉलिटिक्स इन इंडिया,* मुम्बई, 1966

गैलेन्सन, वॉल्टर एण्ड सेमौर मार्टिन लिप्सैट, *लेबर एण्ड ट्रेड यूनियनिज़्म एन इंटरडिसीप्लिनरी रीडर,* न्यूयार्क 1960।

घोष सुब्रतो, *ट्रेड यूनियनिज़्म इन अंडरडैवलप्ड कंट्रीज़,* कोलकत्ता, 1960।

होक्सी, आर. एफ. *ट्रेड यूनियनिज़्म इन यूनाइटिड स्टेट्स,* न्यूयार्क 1966।

रमन, एन. पट्टाभी, *पॉलीटिकल इन्वॉल्वमैंट ऑफ इन्डियाज़ ट्रेड यूनियन्स,* न्यूयार्क 1967।

सक्सेना, किरन, *नेशनल मूवमैंट एण्ड ट्रेड यूनियन मूवमैंट,* नई दिल्ली, 1990।


## 23.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**

1) भाग 23.1 देखें।

2) भाग 23.1 देखें।

**बोध प्रश्न 2**

1) भाग 23.2 देखें।

2) भाग 23.2 देखें।

**बोध प्रश्न 3**

1) भाग 23.3 देखें।

**बोध प्रश्न 4**

1) भाग 23.4 देखें।

**बोध प्रश्न 5**

1) उप-भाग 23.5.1 देखें।

2) भाग 23.5.2 देखें।

**बोध प्रश्न 6**

1) भाग 23.6 देखें।

**बोध प्रश्न 7**

1) भाग 23.7 देखें।

**बोध प्रश्न 8**

1) भाग 23.8 देखें।

**बोध प्रश्न 9**

1) भाग 23.9 देखें।